द्वितीय अध्याय

प्रकृति और मानव

द्वितीय अध्याय

प्रकृति और मानव

मानव का जन्म एवं विकास प्रकृति की गोद में ही हुआ है। प्रकृति मातृवत् सब का पालन-पोषण करती रही है। भारतीय संस्कृति एक अरण्य-संस्कृति है, जहाँ पेड़-पौधों व वन्य जीवों को पूजा जाता है। जलाशय, पर्वत, वनस्पति, गो, तुलसी, आम, गूलर, बरगद, पीपल, आँवला, नीम, पारिजात आदि श्रेष्ठ वृक्ष प्रत्येक आस्तिक के लिये सदा से पूजनीय, नमनीय एवं वन्दनीय रहे हैं। नदियों को माता माना गया है क्योंकि हम उनके जीवन-रस से जीवित रहते हैं।

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेस्मिन संन्निधिंकुरु॥

पृथ्वी को भी मातृ-तुल्य मान कर उस पर पैर रखने के पहले उससे क्षमा याचना की जाती हैः-

विष्णु पत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।

वट-वृक्षों को न केवल घर-घर पूजा जाता था प्रत्युत सभी गुरूकुलों एवं ऋषि मुनियों के आश्रमों में उन्हें प्रमुख स्थान प्राप्त था।

प्रकृति द्वारा प्राणिमात्र का पोषण :

प्रकृति से ही मानव मात्र ने जीविकोपार्जन के साधन जुटाये हैं। फल, फूल छाल, लकड़ी, विविध औषधियों के लिये पत्ते, जड़, गोंद, मधु आदि वस्तुयें प्रकृति प्रदत्त ही हैं। पुष्प मानव-मन को प्रसन्नता एवं प्रफुल्लता प्रदान करते हैं एवं घने वृक्ष शीतल छाया। वास्तव में वृक्ष, नदी, पर्वत एवं पृथ्वी, सभी परमार्थ के लिये ही कार्यरत हैंः-

सन्त बिटप सरिता गिरि धरनी।
पर हित हेतु सबन्ह कै करनी॥ [1]

शुद्धतम वायु का विकीर्ण :

वृक्ष शुद्धतम वायु विकीर्ण करते हैं जिसमें मनुष्य की प्राणवायु को शुद्ध एवं पुष्ट करने का दिव्य गुण निहित है। इसके प्रभाव से न केवल वातावरण ही शुद्ध रहता है, अपितु मनुष्य में सद्विचारों एवं सद्भावनाओं का उद्रेक भी होता है, मन-मस्तिष्क को शान्ति प्राप्त होती है और ज्ञान की अभिवृद्धि होती है। भारतीय प्राचीन श्रेष्ठतम साहित्य का सृजन-अर्जन इन्हीं वृक्षों के नीचे चिन्तन-मनन करते हुये हुआ था।

प्रकृति द्वारा पर्यावरण-संतुलन :

प्रकृति के विविध उपादान वृक्ष, पहाड़ आदि प्राकृतिक सन्तुलन बनाये रखने के सरल एवं श्रेष्ठतम साधन हैं। वृक्ष जलभरी हवाओं को दूर से ही, सर्वाधिक आकृष्ट करते हैं। विशाल वृक्षों की जड़ें दूर-दूर तक मिट्टी तथा अन्य छोटे वृक्षों की जड़ों को अपने में परिवेष्टित किये रखती हैं तथा ये जड़ें अपने जाल में वर्षा के जल को देर तक रोके रखती हैं। अपने औषधीय गुणों के कारण भूमि के जल का प्रदूषण मिटा कर ये जड़ें फिल्टर का कार्य करते हुये निर्मल जल को धीरे २ उपलब्ध कराती हैं। नदी एवं जलाशय के तटों को जल के प्रवाह से कटने और बाढ़ के उपद्रव को फैलने से रोकती हैं तथा भूस्खलन को भी रोकती हैं। ये विशाल वृक्ष स्वयं उखड़ कर न शीघ्र गिरते हैं और न शीघ्र क्षीण होते हैं। ये रोपण, सिंचन, संरक्षण का भी कष्ट नहीं देते। ये दीर्घायु होते हैं तथा जीवों को भी दीर्घायु बनाते हैं। ये जनोपयोगी देव वृक्ष जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण, बाढ़-भूस्खलन, सूखा आदि से बचाव करके, प्राकृतिक संतुलन में महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं।

प्रकृति में प्राण-प्रतिष्ठा :

भारतीय चिन्तन में नदी, वृक्ष, पशु-पक्षी आदि जीवधारियों के साथ-साथ पत्थर जैसी निर्जीव वस्तु में भी प्राण-प्रतिष्ठा करके उसे मानवीय रूप की परिकल्पना के साथ देविकरूप प्रदान किया गया है। भारतीय जन-मानस की आस्था को देखकर, जो पत्थर पर सिन्दूर पोत कर ही उसे हनुमान मान कर पूजने लगता है, विदेशी विद्वान भी चमत्कृत होते हैं। इस प्रकार की आस्था हमारे संस्कारों में गहराई तक पनपती रही है।

वनस्पति में चेतना :

वेदों ने ऐसा सिखाया है कि अन्य प्राणियों की तरह वनस्पति पर भी दया दिखाना चाहिये क्योंकि वनस्पति में भी मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्राणियों के जैसी चेतना होती है। उन्हें जैसा सुख-दुःख होता है, वैसा ही वनस्पतियों को भी होता है। हरे वृक्ष पर किसी भी जगह आघात करने से वह रस का स्राव करने लगता है। यह बात सूखे काठ में दिखाई नहीं देती। इससे यह प्रतीत होता है कि हरा वृक्ष सजीव है। हरे वृक्ष की कोई शाखा रोग या चोट से जब अत्यन्त आहत हो जाती है तब उसमें व्याप्त जीव उसे छोड़ देता है और वह सूख जाती है। इस प्रकार यदि जीव सारे वृक्ष को छोड़ देता है तो सारा वृक्ष ही सूख जाता है।

छान्दोग्य उपनिषद् में बताया गया है कि हरा वृक्ष जीवात्मा से ओतप्रोत रहता है अतः वह खूब जलपान करता है ओर जड़ों द्वारा पृथ्वी के रसों को चूसता है:-

स एष जीवेनात्मनानु प्रभूतः पेपीयमानो

मोदमानस्तिष्ठति [2]

'हमारी तरह वनस्पति भी प्यार चाहती है और प्यार पाकर बढ़ती है', आदि बातों से वेदानुगत शास्त्र भरे पड़े हैं। फूल-पत्ती एवं दाँतुन के लिए टहनी तोड़ते समय उनसे प्रार्थना करनी चाहिये। उन्हें व्यर्थ तोड़ने से प्रायश्चित का विधान है। पेड़-पौधों में प्राण होने की बात को सर जगदीशचन्द्र बोस ने वैज्ञानिक प्रयोग द्वारा सिद्ध कर दिखाया है।

प्रकृति-प्रेरणा का स्रोत :

ऋषि-मुनियों ने प्रकृति की सुरम्य गोद में बैठ कर, अतुलनीय सौन्दर्य का रसास्वादन करते हुये तपस्या की थी। मोह माया को त्याग कर तपस्या में लीन होने की ऋषिमुनियों की शक्ति का रहस्य प्रकृति का सौन्दर्य ही है। विशाल उन्नत हिम-मण्डित पर्वत-शिखरों, घने जंगलों एवं सुगन्ध से महकते जलधाराओं का मन्त्रमुग्ध कर देने वाला सौन्दर्य मनुष्य में कोमल, शान्त एवं मौलिक विचारों का सृजन करता है। उसकी सुप्त कलात्मक भावनायें यहाँ जाग उठती हैं। मनुष्य की रचनात्मक-शक्ति की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति होने लगती है। जिज्ञासुओं प्रकृति-प्रेमियों, अन्वेषकों या किसी भी रुचि के व्यक्ति के लिये उसकी रुचि का विषय यहाँ उपलब्ध है। हम चाहें सौन्दर्य की छटा को शब्दों में उतारें या चित्रकार के रूप में कैनवेस पर, प्रत्येक अभिरुचि को पूरा करने की विशाल संभावना यहाँ मिलती है। प्रकृति का यह अनुपम सौन्दर्य हमें कौतूहल और विस्मय से भर देता है। आँखें ठगी-सी रह जाती हैं। सांसारिक वस्तुओं का मूल्य यहाँ तुच्छ है। यह प्राकृतिक सौन्दर्य घोरतम निराशा को भी आशा के प्रकाश में बदलने की शक्ति प्रदान करता है। इससे मन में एक नई अनुभूति, प्रेरणा एवं उमंग का प्रादुर्भाव होता है।

प्रकृति-सौन्दर्य में स्रष्टा की खोज :

प्रकृति की रंग-बिरंगी फुलवारी, पशु-पक्षी, कीट-पतंगों आदि की अदभुत् सृष्टि, सूर्य-चन्द्र-तारों एवं षड् ऋतुओं को यथा समय चक्कर लगाते हुये देख कर मानव सहज ही सोचने लगा कि इस कुशल रचना के पीछे कोई रचनाकार है। ऋषि लोग उस अनुपम स्रष्टा को खोजने लग गये। उनका चिन्तन, मनन, ध्यान-धारणा, समाधि, सब का लक्ष्य यही रहा कि उस परम ज्ञानी नियन्ता का पता लगे। यह खोज शताब्दियों,

सहस्राब्दियों तक निरन्तर जारी रही। ऋषियों ने प्रकृति के विभिन्न रूपों को परमात्मा का ही स्वरूप माना है। उनके अनुसार परमात्मा ने ही नाना रूप धारण कर रखे हैं और हमें यत्र-तत्र-सर्वत्र उसी के दर्शन होते हैं:-

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय [3]

वेदों एवं पुराणों में प्रकृति-वर्णन :

वेदों में, विशेष कर ऋग्वेद में गीति-काव्य (लिरिक) के रूप में उषा का वर्णन करने वाली सुन्दर ऋचायें हैं। वेदों में बरगद, पीपल आदि देव-तरुओं का भी प्रभावी वर्णन है। पुराणों में तुलसी, शीशम, अर्जुन, जयन्ती, करवीर, बेल, पलाश आदि की महिमा का विशद् वर्णन मिलता है। पुराणों में स्पष्ट उल्लेख है कि जो व्यक्ति छाया, फूल और फल देने वाले वृक्षों को मार्ग में तथा देवालय में लगाता है, वह इस लोक में महती कीर्ति तथा शुभ परिणाम को प्राप्त करता है। निस्सन्तान व्यक्ति के लिये वृक्ष ही पुत्र है, जो उसके लोक और परलोक को सुधारता है।

पुराणों में प्रकृति-पूजा :

पुराणों में वृक्षों को पूज्य माना गया है। उनमें विशेषतः तुलसी के पौधे का नियमित पूजन करने का विधान है। प्रातः काल में जल-फूल-आरती-भोग के साथ ही संध्या समय तुलसी-वृन्दावन पर दीप रखना भी अनिवार्य समझा जाता है। प्रतिवर्ष तुलसी-हरि के विवाह का आयोजन करने का भी विधान है। पुराणों में अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष की बड़ी महिमा गाई गई है। स्कन्द पुराण के अनुसार अश्वत्थ वृक्ष के मूल में विष्णु, तने में केशव, शाखाओं में नारायण, पत्तों में भगवान श्री हरि और फलों में देवताओं से युक्त अच्युत भगवान सदा निवास करते हैं:-

मूले विष्णुः स्थितो नित्यं स्कन्धे केशव एव च।
नारायणस्तु शाखासु पत्रेषु भगवान् हरिः॥
फलेऽच्युतो न सन्देहः सर्वदेवैः समन्वितः। [4]

पुराणों में वृक्षारोपण का भी अदभुत् महात्म्य बताया गया है। कहा गया है कि अश्वत्थ वृक्ष के रोपण करने वाले व्यक्ति की वंश-परम्परा कभी समाप्त नहीं होती, अपितु अक्षय रहती है। इसके आरोपण से समस्त ऐश्वर्य एवं दीर्घायु की प्राप्ति होती है तथा पितृगण नरक से छूट कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

अश्वत्थः स्थापितो येन तत्कुलं स्थापितं ततः।
धनायुषां समृद्धिस्तु पितॄन् क्लेशात् समृद्धरेत् [5]

भविष्य पुराण-'प्रकृति-दर्शन' से पुण्य-प्राप्ति :

'भविष्य पुराण' में लिखा है कि मयूर, वृषभ, सिंह, क्रौंच एवं कपि का, घर, खेत, और वृक्ष पर भूल से भी दर्शन हो जाय तो उसको नमस्कार करना चाहिये। नीलकण्ठ पक्षी का दशहरे के दिन दर्शन बड़ा ही शुभ माना गया है। नीलकण्ठ पक्षी को नीलाभ पुष्पक विमान का प्रतीक माना जाता है। इनके दर्शन मात्र से धन तथा आयु की वृद्धि होती है ऐसा माना जाता है। 'भविष्य पुराण' में नीम की प्रार्थना करते हुये कहा गया है कि 'हे निम्ब! तुम भगवान् सूर्य के आश्रय-स्थान हो। तुम कटु स्वभाव वाले हो, तुम्हारे भक्षण करने से मेरे सभी रोग सदा के लिए नष्ट हो जायँ और तुम मेरे लिये शान्त स्वरूप हो जाओ':-

त्वं निम्ब कटुकात्मासि आदित्यनिलयस्तथा।
सर्वरोगहरः शान्तो भव मे प्राशनं सदा॥ [6]

'श्रीमद्भागवत महापुराण' में प्रकृति ईश्वर सदृश्य पूज्य :

'भागवत महापुराण' में प्रकृति के विविध उपादानों को ईश्वर के समान ही पूज्य मान गया है। इसमें आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशायें, वृक्ष-वनस्पति, नदी एवं समुद्र को भगवान् का शरीर माना गया है। इन सभी रूपों में स्वयं भगवान् ही प्रकट है, ऐसा समझ कर भगवान् का अनन्य भक्त यावन्मात्र जगत् को भगवद्-भाव से प्रणाम करता है:-

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च,
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं,
यत् किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥ [7]

'भागवत' में प्रकृति के सौन्दर्य का मनोरम वर्णन किया गया है, विशेषतः वर्षा और शरद ऋतु का वर्णन तो अत्यन्त ही सुन्दर है। बादलों के आगमन से मोरों का हर्षित होकर कूजना व नृत्य द्वारा आनन्दोत्सव मनाने का सुन्दर वर्णन किया गया है।

मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दञ्छिखण्डिनः।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाच्युतजनागम॥ [8]

वाल्मीकीय रामायण में प्रकृति-वर्णन :

'वाल्मीकीय रामायण' में शुक, पिक, आदि पक्षियों के कलरव, वसन्त ऋतु में खिले हुये पलाश-वृक्षों के पुष्पों की अरुण-प्रभा, भिलावे एवं बेल के फूलों एवं फलों के भार से झुके हुये पेड़ों, मधुमक्खियों के पुष्ट छत्तों एवं मनोहर चित्रकूट पर्वत, आदि

का अत्यन्त चित्ताकर्षक वर्णन किया गया है:-

एष क्रोशति नत्यूहस्तं शिखी प्रतिकूजति।
रमणीये वनोद्देशे पुष्पसंस्तरसंकटे॥ 9

'अध्यात्मरामायण' में प्रकृति-सौन्दर्य का चित्रण :

'अध्यात्म रामायण' में मृग, पक्षियों से समाकुल तथा फल-पुष्पादि से परिपूर्ण आश्रमों का वर्णन किया गया है। फल-युक्त आम्र-वृक्ष, पनस, कदली-खण्ड, चम्पक, कचनार, नागकेशर के वृक्ष, कुमुद, कह्लार, कमलादि से सुशोभित पुष्करिणी, पशु-पक्षियों से गूँजित बनों, स्वच्छ जलवाले सरोवरों, पर्वत के चित्र-विचित्र मृगों तथा पक्षियों का मनोहर वर्णन किया गया है। किष्कन्धाकाण्ड के प्रारम्भ में पम्पासर के सौन्दर्य-वर्णन में हंस, कारण्डव, चक्रवाक, जल-कुक्कुट, कोयष्टि तथा क्रौंच पक्षियों का चित्रण किया गया है:-

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकादिशोभितम्।
जलकुक्कुटकोयष्टि क्रौंचनादोपनादितम्॥ 10

'महाभारत' में प्रकृति-वर्णन :

'महाभारत' प्रकृति-सौन्दर्य से ओतप्रोत है। विशेषतः वर्षा एवं शरद्-ऋतु का वर्णन तो अत्यन्त सुन्दर है। वन में वर्षा की बौछारों से भीगते हुये वराह, मृगों का एवं पक्षियों की भाँति २ बोलियों का वर्णन करते हुये महर्षि वेदव्यास ने लिखा है:-

नदतां काननन्तिषु श्रूयन्ते विविधाः स्वनाः।
वृष्टिभिश्च्छाद्य मानानां वराह मृग पक्षिणाम्॥ 11

महाभारतकार ने वर्षा-ऋतु में पपीहों और मोरों के नर कोकिलों के साथ आनन्दोन्मत्त होकर नाचने एवं इधर-उधर उड़ने का सुन्दर वर्णन किया है। वर्षा-ऋतु में मेंढ़कों का गर्व के साथ इधर उधर कुदना एवं टर्र-टर्र करना भी दर्शनीय है:-

स्तोककाः शिखिनश्चैव पुंस्कोकिलगणै सह।
मत्ता परिपतन्ति स्म दर्दुराश्चैव दर्पिता॥ 12

शरद् ऋतु का वर्णन करते हुये वेदव्यास ने लिखा है कि नदियाँ और पुष्करिणियाँ कुमुदों तथा कमल-पुष्पों से अलंकृत हैं। उनमें शीतल जल भरा हुआ है और वे सब के लिये सुखदायिनी प्रतीत होती हैं:-

कुमुदैः पुण्डरीकैश्च शीतवारिधराः शिवाः।
नदीः पुष्करिणीश्चैव ददृशुः समलंकृता॥ 13

'श्रीमद् भगवद्गीता' में प्रकृति पर देवत्व का आरोप :

गीता के अनुसार यह सम्पूर्ण विश्व भगवदीय शक्ति से परिव्याप्त है। चराचर जो भी प्राणी है सब में भगवान् का अधिष्ठान है, अतः यह अखिल जगत् भी भगवत्स्वरूप ही है। यद्यपि सभी वस्तुयें एवं प्राणी उन्हीं की विभूति है; तथापि जिनमें भगवान् के तेज, बल, विद्या, ऐश्वर्य, कान्ति और शक्ति आदि का विशेष विकास रहता है, वे भगवान् की विशिष्ट या दिव्य विभूतियाँ कहलाती हैं। श्रीकृष्ण ने गीता में अपनी विशिष्ट विभूतियों का वर्णन करते हुये आठ वसुओं में अपने आपको अग्नि, शिखरवाले पर्वतों में सुमेरु, स्थिर रहने वालों में हिमालय तथा वृक्षों में पीपल माना है।

वसूनां पावकाश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्। [14]

यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालय। [15]

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः। [16]

यहाँ श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यह बताया है कि प्रकृति के सभी उपादान ईश्वरीय शक्ति से सम्पन्न हैं, अतः भगवान् के ही स्वरूप हैं। इनमें भगवान् का ही तेज, बल, ऐश्वर्य, कान्ति और शक्ति है, अतः ये सभी वन्दनीय हैं। यहाँ श्रीकृष्ण ने प्रकृति पर देवत्व आरोपित किया है।

श्रीकृष्ण द्वारा प्रकृति-पूजा की प्रेरणा :

इन्द्र को वर्षा करने वाले मेघों का स्वामी माना जाता है। अतः गोकुलवासी इन्द्र की पूजा करते थे। श्रीकृष्ण ने इसका विरोध किया तथा समझाया कि गोपालन के लिये गिरिराज गोवर्धन उपयोगी है। अतः इसकी पूजा एवं प्रदक्षिणा की जानी चाहिये। उन्होंने गौओं को आगे करके गोवर्धन की परिक्रमा की और उसे भगवान् का स्वरूप बताया। उन्होंने गोपो से कहा 'अपना एवं गौओं का कल्याण करने के लिए गिरिराज को हम नमस्कार करें'

एषोऽवजानतो मृत्यान् कामरूपी वनौकसः।
हन्ति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवाम्। [17]

भक्तिकाल में प्रकृति-वर्णन :

भक्तिकाल में कवियों का ध्यान अपने आराध्य की ओर अधिक था। वे उसीको ध्यान में रखते हुये काव्य-रचना करते थे। बाह्य प्रकृति का चित्रण प्रसंग-वश अवश्य हुआ है लेकिन स्वतन्त्र चित्रण की आवश्यकता उन्हें कम अनुभव होती थी। महाकाव्य के लक्षण पूर्ण करने के लिए जब कभी जलाशय आदि का वर्णन आता भी था,

तो वह कथा-प्रवाह से दबा हुआ होता था। कृष्ण-काव्य के वियोग-वर्णन में विरह की तीव्रता बताने के लिए सूरदास ने लिखा है:-

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं
तब ये लता लगति अति शीतल,
अब भईं विषम ज्वाल की पुंजै॥ [18]

गोस्वामी तुलसीदास ने प्रकृति से उपदेश ग्रहण करने की परम्परा का अनुसरण करते हुये 'श्रीमद्‌भागवत् महापुराण' के आधार पर वर्षा और शरद्-ऋतु के वर्णन में बहुत से नैतिक तथ्यों को प्रकाशित किया है।

दामिनि दमक रह न घन माहीं।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें।
खल के बचन संत सह जैसें॥ [19]

रीतिकाल में प्रकृति-वर्णन :

रीतिकाल के कवियों ने प्रकृति का उद्दीपन रूप से वर्णन किया है। रस-रास में चाँदनी एवं मलय समीर का तथा विरह में ऋतुओं तथा बारहमासे का वर्णन इसी प्रवृत्ति का फल है। उद्दीपन रूप से प्रकृति की सुरम्य छटायें सुख की अनुभूति को तीव्र कर देती हैं और वियोग में वे ही दृश्य पूर्वानुभूत सुखों को याद दिला कर विरह वेदना को विषमता प्रदान कर देते हैं। वर्षा-ऋतु में चमकते हुये जुगनुओं को देख कर कविवर बिहारी की विरहिणी अपनी सखी से कहती है, "अरी भीतर चली आ, देखती नहीं, आज अंगारे बरस रहे है":-

बिरह जरी लखि जोगननु, कहयौ न डटि कै बार।
अरी आउ भजि भीतरी, बरसत आजु अंगार॥ [20]

इस प्रकार रीतिकाल के कवियों ने प्रकृति को 'मुक्त रूप' में न देख कर अलंकार भार से दबा दिया और नायक-नायिका के रस-विलास का साधन बना दिया।

आधुनिक काल में प्रकृति-वर्णन :

आधुनिक काल के उत्थान के साथ प्रकृति के प्रति कवियों का दृष्टिकोण बदला। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने उसे स्वच्छन्द चित्रण का विषय बनाने का प्रयत्न किया; लेकिन वे प्रकृति के साथ सम्यक् न्याय नहीं कर पाये। हरिऔध तक आते आते काव्य में स्वच्छन्द प्रकृति वर्णन की प्रवृत्ति जाग्रत हुई। 'प्रिय प्रवास' में प्रकृति का सुन्दर वर्णन मिलता है।

दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु-शिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी कुल बल्लभ की प्रभा॥

मैथिलीशरण गुप्त ने प्रकृति के विविध रमणीय रूप को देख कर उसे 'नटी' की संज्ञा से अभिहित किया और रामधारी सिंह दिनकर ने हिमालय को क्रान्ति का दूत बनायाः-

मेरे नगपति मेरे विशाल।

कालान्तर में जयशंकर 'प्रसाद', पन्त, निराला एवं महादेवी वर्मा आदि छायावादी कवियों ने प्रकृति में चेतना का आरोप करके उसके प्रति चेतन के प्रेम की अभिव्यक्ति की है। उन्होंने प्रकृति में उन समस्त मानवी भावनाओं का दर्शन किया, जो नर-नारी के जीवन में विभिन्न रूप में आविर्भूत हो सकती है। बाद में प्रकृति का आश्रय लेकर रहस्यवादी कवियों ने आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध की अभिव्यक्ति की।

प्रसादजी सारी प्रकृति में एक व्यापक जिज्ञासा देखते हैं:-

महानील इस परम व्योम में, अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान।
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण किसका करते से संधान॥ [21]

संस्कृत साहित्य में भवभूति ने प्रकृति के विकराल रूप का भी वर्णन किया है। हिन्दी कवियों में प्रसादजी ने कामायनी में प्रकृति का इसी प्रकार का चित्रण किया है:-

उधर गरजती सिंधु लहरियाँ कुटिल काल के जालों-सी।
चली आ रही फेन उगलती फन फैलाये व्यालों-सी॥ [22]

तुलसीदास का प्रकृति-प्रेम :

गोस्वामी तुलसीदास प्रकृति-प्रेमी हैं। जिस प्रकार उन्हें अपने पात्रों की अन्तः प्रकृति का पूर्ण ज्ञान है, उसी प्रकार वे बाह्य प्रकृति के चित्रण में भी निष्णात हैं। उनका मन प्रकृति में रमा है इसलिये उनका प्रकृति-वर्णन सहज एवं स्वाभाविक हुआ है। 'रामचरितमानस' उनके प्रकृति-चित्रण से ओत-प्रोत है।

उन्होंने पम्पा सरोवर का वर्णन करते हुये उसमें विकसित रंग-बिरंगे कमल, मधुर स्वर से गुंजार करते हुये भ्रमर, जल-मुर्ग एवं राजहंसों का वर्णन किया है:-

बिकसे सरसिज नाना रंगा।
मधुर मुखर गुंजत बहु भंगा॥
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा।
प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा॥ 23

उन्होंने चम्पा, मौलसिरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढ़ाक, आम एवं नये-नये पत्तों और पुष्पों से युक्त वृक्षों का सुन्दर वर्णन किया है:-

चंपक बकुल कदंब तमाला।
पाटल पनस परास रसाला॥
नवपल्लव कुसुमित तरु नाना।
चंचरीक पटली कर गाना॥ 24

गोस्वामीजी प्रकृति-वर्णन के लिये लालायित दिखाई देते हैं। वे प्रकृति-सौन्दर्य के वर्णन का कोई अवसर चूकना नहीं चाहते। सीतान्वेषण के लिये लंका में प्रवेश करने पर हनुमान वहाँ के वन की शोभा देख कर प्रसन्न हो उठते हैं:-

तहाँ जाइ देखी बन सोभा।
गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥
नाना तरु फल फूल सुहाए।
खग मृग बृंद देखि मन भाए॥ 25

(क) क्षेमकरी पक्षी का वर्णन :

एक बार यात्रा के समय गोस्वामीजी ने क्षेमकरी पक्षी (सफेद चील) को देखा था। माना जाता है कि प्रस्थान करते समय क्षेमकरी के दर्शन होना मंगलकारी होता है। गोस्वामीजी उसके सौन्दर्य को देख कर भाव-विभोर हो उठे। उनका कवित्व जाग उठा। उन्होंने उसका सुन्दर वर्णन इस प्रकार किया है:-

कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुखचन्द्र सो चन्द सों होड परी है।
बोलत बोल समृद्ध चुवै, अवलोकत सोच विषाद हरी है॥
गौरी कि गंग बिहंगिनि वेष, कि मंजुल मूरति मोद-भरी है।
पेखि सप्रेम पयान-समै सब सोच बिमोचन छेमकरी है॥ 26

गोस्वामीजी ने बन, बाग, उपवन, वाटिका, सरोवर कुँओ और बावलियों का भी सुन्दर चित्र खींचा है:-

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥ 27

(ख) प्रकृति का सजीव वर्णन :

गोस्वामीजी ने प्रकृति का सजीव वर्णन किया है। वे वर्षा का वर्णन करते हुये ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं, मानो सचमुच बादल घिरे हुये हों, बिजली चमक रही हो एवं प्रत्यक्ष रूप से वर्षा हो रही हो:-

घन घमंड नभ गरजत घोरा।
प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥
दामिनि दमक रह न घन माहीं।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥ 28

(ग) उपदेशिका के रूप में प्रकृति-वर्णन :

गोस्वामीजी ने प्रकृति के प्रांगण में घटित होने वाली विभिन्न घटनाओं से जीवनोपयोगी सामग्री संकलित की है। किष्किन्धाकाण्ड में वर्षा एवं शरद ऋतु के वर्णन की प्रत्येक पंक्ति में प्रकृति नैतिक तथ्यों का प्रकाशन एवं उपदेश देती हुई दिखाई देती है:-

बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें।
खल के बचन संत सह जैसें॥ 29

(घ) प्रकृति-वर्णन में शब्द-सौन्दर्य :

गोस्वामीजी के प्रकृति-वर्णन में भाषा सौन्दर्य दृष्टव्य है। किष्किन्धाकाण्ड में वर्षा-वर्णन करते समय जहाँ उन्होंने 'डरपत मन मोरा' लिखा है वहाँ 'घन घमण्ड' एवं 'घोरा' शब्द का प्रयोग किया है। जहाँ 'गरजत लागत परम सुहाये' है वहाँ 'मेघ' शब्द कहा है। जहाँ मोरों के नाचने का वर्णन है वहाँ 'बारिद' जैसा कोमल शब्द रखा है। वसन्त ऋतु के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये संगीतमय शब्दों का प्रयोग किया है।

(ड़) प्रकृति का संवेदनशील स्वरूप :

गोस्वामीजी स्वयं प्रकृति के रंग में तो रंगे ही हैं, उन्होंने प्रकृति को भी अपने रंग में सराबोर कर लिया है। उन्होंने प्रकृति पर मानवी भावों का आरोप किया है। प्रकृति मनुष्य के सुख-दुःख में सहभागी होती है। राम-वनगमन के समय वाटिका के वृक्ष और लतायें कुम्हलानें लग जाती हैं एवं नदी तथा तालाब भयानक दिखाई देने लगते हैं।

बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं।
सरित सरोवर देखि न जाहीं॥ 30

उसी प्रकार राम-लक्ष्मण और सीता को तपस्वी वेश में वन की ओर आते

देख कर पशु-पक्षी प्रेमानन्द में भी मग्न हो जाते है।

खग मृग मगन देखि छबि होहीं।
लिए चोरि चित राम बटोहीं॥ [31]

(च) प्रकृति-वर्णन में भक्ति भावना की प्रबलता :

गोस्वामीजी के अनुसार प्रकृति ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, जिसके हृदय में भक्ति की प्रछन्न धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हो रही है। गोस्वामीजी के लिये प्रकृति का समस्त सौन्दर्य उनके इष्टदेव राम का सौन्दर्य है। उनकी प्रकृति आराध्य देव राम के संकेत पर नृत्य करती है। प्रकृति का जो कुछ भी है वह सब राम के लिये ही है। प्रकृति सौन्दर्य से परिपूर्ण होकर सौन्दर्य-सागर राम का दर्शन करके आनन्द-मग्न हो जाती है। प्रकृति राम को परम तत्त्व मान कर उनकी सेवा करती है:-

जहँ जहँ जाहि देव रघुराया।
करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया॥

गोस्वामीजी के प्रकृति-प्रेम की तुलना आंग्ल कवि वर्ड्सवर्थ से की जा सकती है, जो प्रकृति के प्रति श्रद्धा-भाव रखते हैं।

भोगवादी दृष्टिकोण से प्रकृति-विनाश :

अठारहवीं, उन्नीसवीं शताब्दी के योरोपीय विचारकों की मान्यता है कि प्रकृति और मानव का नित्य संघर्ष चलता रहता है। अतः प्रकृति पर विजय प्राप्त करके उसे नियंत्रण में लाना और उपभोग्य बनाना चाहिये। उन्नीसवीं शताब्दी में मॉन्टेग्यू नामक विचारक ने यह प्रतिपादित किया कि मानव सम्पूर्ण सृष्टि को अपने अधिकार और नियंत्रण में रख सकता है। इस वस्तुनिष्ठ साहित्य (Pink literature) का तत्कालीन समाज पर बहुत प्रभाव पड़ा है।

इस विचारधारा में सौन्दर्य की कल्पना और काव्य का दृष्टिकोण नहीं है। इससे भारतीय ऋषि मुनियों का विभूतिवादी एवं सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण विलुप्त होकर उसके स्थान पर गुलाब के फूलों को देख कर गुलकन्द की फैक्टरी एवं जल-प्रपातों से विद्युत-केन्द्र खोलने की ओर ध्यान जाने लगा। इस प्रकार प्रकृति का दोहन एवं शोषण होने लगा। इसके फलस्वरूप आज वनों की संख्या कम होती जा रही है और गाँवों, कस्बों तथा शहरों के आसपास के हरे खेतों का स्थान काँक्रीट के जंगल ले रहे हैं। वनों के कटान से जीव-जन्तु लुप्त हो रहे हैं, पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है और विश्व-पर्यावरण को खतरा उत्पन्न हो गया है। अतः पर्यावरण संरक्षण के लिए हमें अपनी अरण्य-संस्कृति के पुरातन मूल्यों की पुनर्स्थापना करनी होगी। हमें अपना हित जानकर प्रकृति से नाता तोड़ना नहीं, जोड़ना होगा।

A

निष्कर्ष :

मानव का जन्म एवं विकास प्रकृति की गोद में ही हुआ है। प्रकृति सब का मातृवत् पालन-पोषण करती है। भारतीय संस्कृति एक अरण्य-संस्कृति है, जहाँ पेड़-पौधों एवं वन्य जीवों को पूजा जाता है। यहाँ सघन वृक्षों की शीतल छाया में ही हमारे ऋषि मुनियों ने ज्ञानार्जन करके मानव जाति के विकास में सहयोग दिया है।

प्रकृति-सौन्दर्य मनुष्य में कोमल, शान्त एवं मौलिक विचारों का सृजन करता है। इससे मानव की सुप्त कलात्मक भावनायें जाग उठती हैं। मनुष्य की रचनात्मक शक्ति की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति के लिये प्रकृति प्रेरणा का स्रोत है।

प्रकृति की रंग-बिरंगी फुलवारी, पशु-पक्षी, कीट-पतंगों आदि की अदभुत् सृष्टि को देख कर ऋषियों ने इस कुशल रचना के अनुपम स्रष्टा की खोज की। उनके अनुसार परमात्मा ने ही प्रकृति के रूप में नाना रूप धारण किये हैं।

हमारे यहाँ वेद, पुराण, 'भविष्य पुराण', 'श्रीमद् भागवत महापुराण' 'वाल्मीकि रामायण', 'अध्यात्म रामायण', 'महाभारत' आदि ग्रन्थों में प्रकृति-सौन्दर्य का सुन्दर चित्रण किया गया है। 'श्रीमद् भगवद्गीता' में श्रीकृष्ण ने अपनी विशिष्ट विभूतियों का वर्णन करते हुये सुमेरु, हिमालय एवं पीपल को अपना ही स्वरूप बताया है। श्रीकृष्ण ने गोवर्धन-पूजा के रूप में प्रकृति-पूजा की प्रेरणा दी है। भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल का काव्य प्रकृति-वर्णन से ओतप्रोत है।

गोस्वामी तुलसीदास प्रकृति-सौन्दर्य के प्रेमी थे। उन्होंने प्राकृतिक उपमाओं द्वारा मानवचरित्र के विकास का प्रयत्न किया है। उन्होंने प्रकृति से मनुष्य का सम्बन्ध अटूट माना है और सम्पूर्ण विश्व को राममय माना है।

योरोपीय विद्वानों की मान्यता है कि प्रकृति और मानव का नित्य संघर्ष चलता रहता है अतः उस पर विजय प्राप्त करके उसे उपभोग्य बनाना चाहिये। मँटिग्यू नामक विचारक के अनुसार मानव सम्पूर्ण सृष्टि को अपने अधिकार में रख सकता हैं। इस वस्तुनिष्ठ साहित्य (Pink literature) का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इसके फलस्वरूप प्रकृति का दोहन होने लगा और वनों के कटान से पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ गया। अतः पर्यावरण सन्तुलन के लिये हमें अपनी अरण्य-संस्कृति के पुरातन मूल्यों की पुनर्स्थापना करनी होगी।

■ □ ■

■ संदर्भ - सूची ■

1. रामचरितमानस / उत्तरकाण्ड / 124 / 3
(सटीक मोटा टाइप)
टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार
पृष्ठ 1054

2. छान्दोग्य उपनिषद् / 6 / 11 / 1
कल्याण शिक्षांक वर्ष 62, संख्या 1
पृष्ठ 167

3. ऋग्वेद / 6 / 47 / 18
महर्षि दयानन्द सरस्वती
पृष्ठ 566

4. स्कन्द / नागर / 247 / 41-42, 44
मासिक कल्याण संख्या 6, वर्ष 66
सम्पादक राधेश्याम खेमका
पृष्ठ संख्या 586

5. वही
पृष्ठ 587

6. कल्याण (संक्षिप्त भविष्य पुराणांक)
वर्ष 66, संख्या 1
पृष्ठ 193

7. श्रीमद्भागवत-महापुराण / 11 / 2 / 41
द्वितीयः खण्डः
महर्षि वेदव्यास प्रणीतं
पृष्ठ 714

8. वही / 10 / 20 / 20
पृष्ठ 254

9. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण / अयोध्याकाण्ड / 55 / 9
(प्रथम भाग)
पृष्ठ 341

10. अध्यात्मरामायण / किष्किन्धाकाण्ड / प्रथम सर्ग / 3
अनुवादक मुनिलाल
पृष्ठ 167

11. महाभारत / वनपर्व / 182 / 7
(द्वितीय खण्ड)
श्रीमन्महर्षि वेदव्यास प्रणीत
अनुवादक पं. रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'
पृष्ठ 1460

12. वही / वनपर्व / 182 / 8
पृष्ठ 1460

13. वही / वनपर्व / 182 / 13
पृष्ठ 1460

14. श्रीमद्भगवद्गीता / 10 / 23
(तत्त्व विवेचनी हिन्दी-टीका सहित)
टीकाकार जयदयाल गोयन्दका
पृष्ठ 425

15. वही / 10 / 25
पृष्ठ 426

16. वही / 10 / 26
पृष्ठ 428

17. श्रीमद्भागवत / 10 / 24 / 37
(द्वितीय खण्ड)
महर्षि वेदव्यास प्रणीत,
पृष्ठ 285

18. सूरदास और उनका भ्रमरगीत
डा. श्रीनिवास शर्मा
पृष्ठ 194

19. रामचरितमानस / किष्किन्धाकाण्ड / 13 / 1, 2
(सटीक मोटा टाइप)
टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार
पृष्ठ 694

20. बिहारी सतसई / 596
महाकवि बिहारी
टीकाकार प्रो. बिराज
पृष्ठ 263

21. कामायनी / आशा
जयशंकर प्रसाद
पृष्ठ 8

22. वही / चिन्ता
पृष्ठ 5

23. रामचरितमानस / अरण्यकाण्ड / 39 / 1
(सटीक मोटा टाइप)
टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार
पृष्ठ 671

24. वही / अरण्यकाण्ड / 39 / 3-4
पृष्ठ 671

25. वही / सुन्दरकाण्ड / 2 / 3-4
पृष्ठ 716

26. कवितावली / उत्तरकाण्ड./ 180
तुलसीदास
टीकाकार लाला भगवानदीन
पृष्ठ 183

27. रामचरितमानस / सुन्दरकाण्ड / 2 / छन्द 2
पृष्ठ 717

28. वही / किष्किन्धाकाण्ड / 13 / 1
पृष्ठ 694

29. वही / किष्किन्धाकाण्ड / 13 / 2
पृष्ठ 694

30. वही / अयोध्याकाण्ड / 82 / 4
पृष्ठ 404

31. वही / अयोध्याकाण्ड / 122 / 4
पृष्ठ 439

■ □ ■